भ्रम

भाग – ५

पिछले लेख में बताया जा चुका है कि हम जो भी —

ख्याल
चिंतन
कल्पना
निश्चय
भावना
उपाय
कर्म
धर्म

आदि करते हैं — सब मायिकी मंडल के **'अहम्'** अथवा **'द्वैत भाव'** के 'भ्रम-गढ़' के अंधकार में ही करते हैं, जिस कारण हमारा समस्त जीवन 'भ्रम-भुलाव' के अंध-गुबार में ही खचित तथा प्रवृत्त रहता है।

यह भ्रम-भ्रांतियों की छाया या 'अंधकार' समस्त जगत अथवा संसार को 'भूत-प्रेत' की भाँति चिपका हुआ है, जिसमें —

पढ़े-लिखे
सयाने
चतुर
ज्ञानी
पंडित
वैज्ञानिक
धर्मी
जपी
तपी
हठी
योगी

त्यागी

उदासी

सन्यासी

भले-भद्र

अफलातून

परमार्थी

भी प्रवृत्त हैं।

इसु जुग महि भगती हरि धनु खटिआ
होरु सभु जगतु भरमि भुलाइआ ।।.....
ब्रहमा बिसनु महादेउ त्रै गुण भुले हउमै मोहु वधाइआ ।।
पंडित पड़ि पड़ि मोनी भुले दूजै भाइ चितु लाइआ ।।
जोगी जंगम संनिआसी भुले विणु गुर ततु न पाइआ ।। (पृ. ८५२)

ब्रहमा बिसनु महेसु त्रै मूरति त्रिगुणि भरमि भुलाई ।।.......
पंडित पड़हि पड़ि वादु वखाणहि तिंना बूझ न पाई ।।
बिखिआ माते भरमि भुलाए उपदेसु कहहि किसु भाई ।। (पृ. ९०९)

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि हम में से कोई भी 'जीव' यह **मानने को तैयार ही नहीं** कि **वह भ्रम भ्रांतियों में जकड़ा है**। इस के विपरीत, प्रत्येक जीव यही समझता है कि वह दूसरों से सयाना तथा भला-भद्र है। अपितु मनुष्य को यह दृढ़ निश्चय है, कि वह विद्यक तथा वैज्ञानिक नवीन रोशनी का मालिक है। इसलिए 'भ्रम' का अंधकार उसके पास नहीं आ सकता। यह भ्रम-भुलाव का अंधकार शेष **अन्य लोगों को ही चिपका होगा ! मुझे नहीं!!**

जब भ्रम-भुलावों की 'परत' धर्म या मजहब को चढ़ जाये, तब अनावश्यक वाद-विवाद, लड़ाई, झगड़े, अत्याचार आदि सब 'धार्मिक मान्यता' अधीन किये जाते हैं।

गुरबाणी में आध्यात्मिक मंडल के प्रकाश की तुलना में हमारे भ्रम-भुलाव वाली दिमागी सयानप तथा चतुराई को यूँ दर्शाया गया है —

कथनी कहि भरमु न जाई ।। सभ कथि कथि रही लुकाई ।। (पृ. ६५५)

बहुतु सिआणप भरमु न जाए ।।
पचि पचि मुए अचेत न चेतहि अजगरि भारि लदाई हे ।। (पृ. १०२५)

पंडित इसु मन का करहु बीचारु ॥
अवरु कि बहुता पड़हि उठावहि भारु ॥ (पृ. १२६१)

मनमुखु अंधु करे चतुराई ॥ भाणा न मंने बहुतु दुखु पाई ॥
भरमे भूला आवै जाए धरु महलु न कबहू पाइदा ॥ (पृ. १०६४)

भ्रम-भ्रांतियों में ग्रस्त समस्त संसार को, अपनी **अदृष्ट 'अज्ञानता' का** —

पता ही नहीं
सूझ ही नहीं
चिंता ही नहीं
ज्ञान ही नहीं
जानने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जीव इन भ्रम-भ्रांतियों के अंधकार में विचरण करता हुआ, सारी उम्र पलच-पलच कर दुखी होता रहता है, परन्तु फिर भी इस 'अंधगुबार' में से निकलने का कभी ख्याल ही नहीं आता।

प्रत्येक जीव ने अपने वातावरण तथा आवश्यकता अनुसार कोई न कोई मजहब या धर्म अपनाया हुआ है तथा उस धर्म की मर्यादा तथा नियमों अनुसार —

पाठ-पूजा
कर्म क्रिया
हठ
जप-तप
योग-साधना

आदि करता है तथा इस **धार्मिक कर्म-क्रिया को ही अपनी आत्मिक कल्याण की मंजिल समझे हुए हैं।**

परन्तु हमारी आत्मिक मंजिल तो उच्चतम आत्मिक मंडल का 'खेल' है जिसे गुरबाणी में —

नाम
सहज
शबद
हुकुम
प्रेम भक्ति

आदि नामों से दर्शाया गया है। परन्तु इन बाहरमुख कर्म कांडों में हम इतने तल्लीन

हैं, कि अपने उत्तम-पवित्र **आत्मिक मंडल की 'मंजिल' से —**

बेख़बर
अन्जान
बेपरवाह
लापरवाह
विमुख

अथवा जान बूझ कर मस्त हुए रहते हैं।

हम यह बात भूल जाते हैं कि यह बाहरमुख शारीरिक तथा मानसिक कर्म-क्रिया तथा साधना —

यत्न हैं	—	परिणाम नहीं
साधन हैं	—	पूर्णता नहीं
सीढ़ियाँ हैं	—	शिखर नहीं
यात्रा हैं	—	मंजिल नहीं
क्लासें हैं	—	डिग्री नहीं
ज्ञान हैं	—	जीवन नहीं
फूल हैं	—	महक नहीं
बल्ब हैं	—	रोशनी नहीं।

वास्तव में, 'नाम' अथवा 'शबद' रूपी 'आत्मिक धर्म' की मंजिल को —

बूझने
सीझने
पहचानने
कमाने
अनुभव करने

के लिए बाहरी 'मानसिक धर्म' रचे गये थे। इन धर्मों के —

पाठ-पूजा
विचार
कर्मक्रिया
मर्यादा
लिबास
धार्मिक चिन्ह

केवल आन्तरिक सूक्ष्म अदृष्ट आत्मिक भावना या दैवीय गुणों को प्रकट करने के

स्थूल संकेत होते हैं। परन्तु हम इन 'संकेतों' को न समझते हुए, केवल चिन्हों को पकड़ कर धार्मिक बन बैठते हैं।

जिस मूल मनोरथ से गुरूओं, अवतारों ने हमें ये चिन्ह आदि प्रदान किए थे, उनकी आन्तरिक दैवीय, सूक्ष्म, रसमयी मूल भावना से वंचित हो कर, बाहरी कर्म-कांडों के जाल मे फँस कर, अपनी बहुत सी साधना, समय तथा धन खो देते हैं।

अधूरी धार्मिक प्राप्ति का मनोकल्पित दिमागी निश्चय ही हमारा दीर्घ धार्मिक भ्रम-भुलाव है। जिस में सारी दुनिया प्रवृत्त है। इस धार्मिक भ्रम गढ़ को बूझना तथा तोड़ना अत्यन्त कठिन है।

गुरबाणी में इस धार्मिक 'भ्रम-गढ़' के विषय में यूं ताड़ना की गयी है —

अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास ॥ (पृ. ३४६)

अनोखी बात तो यह है कि हम स्वयं इन धार्मिक भ्रम-भ्रांतियों में विचरण करते हैं तथा इनका ही प्रचार करते हैं। इस प्रकार भोली-भाली जनता को धोखे में रखना ही हम अपना धार्मिक फर्ज तथा बड़प्पन समझते हैं।

बाहरमुख धर्म के भ्रमों के अतिरिक्त, **अन्तर्मुख आध्यात्मिक भ्रम** भी हैं, जो और भी सूक्ष्म तथा सबल हैं।

जब अन्तर्मुख होकर एकाग्र मन से पाठ, पूजा तथा भजन किया जाता है, तब —

रिद्धियाँ-सिद्धियाँ
नाटक-चेटक
तांत्रिक जादू
करामात
वाक्-सिद्धि
भविष्य-वाणी
अन्तर्यामिता
भूत-प्रेत वशीकरण
जंत्र मंत्र की शक्तियाँ

आदि, अनेक गुप्त तथा आश्चर्यजनक शक्तियाँ सहज-स्वभाव प्राप्त हो जाती हैं। ये गुप्त शक्तियाँ **वृत्ति-सुरति की एकाग्रता से उत्पन्न होती हैं**।

जिज्ञासु को जब यह शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तब वह इन **अद्भुत चमत्कारों** तथा करिश्मों को देखकर हैरान हो जाता है तथा धीरे-धीरे इन शक्तियों को अपनी **'वाह-वाह' या 'स्वार्थ' के लिए प्रयोग करना आरम्भ कर देता**

है तथा इनमें ही गलतान हो कर आत्मिक मंडल की बख्शिशों से **वंचित हो जाता है,** जिससे उसकी अगली आत्मिक उन्नति रुक जाती है।

इन शक्तियों को 'आत्मिक प्राप्ति' समझना ही आध्यात्मिक भ्रम-भुलाव है ।

गुरबाणी में इन **रिद्धियों-सिद्धियों** के विषय में यूँ निर्णय दिया गया है —

आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ।। (पृ. ६)

सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ।।
गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। (पृ. १४)

रिधि सिधि सभु मोहु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. ५९३)

बिनु नावै पैनणु खाणु सभु बादि है धिगु सिधी धिगु करमाति ।। (पृ. ६५०)

पारस मणी रसाइणा करामात कालख आन्हेरे ।
पूजा वरत उपारणे वर सराप सिव सकति लवेरे । (वा.भा.गु ५/७)

सिध नाथु बहु पंथ हउमै विचि करनि करमाती ।
चारि वरनि संसार विचि खहि खहि मरदे भरमि भराती । (वा.भा.गु १२/१२)

रिधि सिधि निधि सभ गोलीआं साधिक सिध रहे लपटाई। (वा.भा.गु २३/५)

हम इन रिद्धियों-सिद्धियों, चमत्कारों से इतने 'प्रभावित' तथा कायल हो गये हैं, कि ये चमत्कार ही हमारा 'परमार्थ' तथा **आत्मिक अवस्था का मापदंड अथवा पैमाना बन चुका है।**

इस के अतिरिक्त जब वृत्ति एकाग्र होती है, तब जिज्ञासु के मन में कुछ शान्ति, ठंड, खुशी, सुख प्रतीत होता है।

इस अलौकिक अनुभव से जिज्ञासु समझता है, कि वह किसी उच्च आत्मिक अवस्था पर पहुँच गया है, जो दूसरों से विशेष तथा ऊंची होती है। इस अवस्था में रिद्धियाँ-सिद्धियाँ तथा चमत्कार सहज-स्वभाव होते रहते हैं, जिससे जिज्ञासु के मन में सूक्ष्म 'अहम्' आ जाता है, तथा वह समझता है कि वह किसी आत्मिक मंजिल पर पहुँच गया है। इस प्रकार जिज्ञासु की आत्मिक उन्नति रुक जाती है तथा अन्जाने ही वह **रुकावट की** अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है तथा मदारी वाला 'रिधि सिधि अवरा साद' में उलझ कर अपना ठाठ-बाठ रचा कर चेले-चाटों में **फँस जाता है ।**

कबीर सिख सारवा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु ॥
चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु ॥ (पृ. १३६९)

ऐसी 'रुकावट' को आत्मिक मंजिल समझना ही जिज्ञासु का दीर्घ **'भ्रम-भुलाव'** है — जिस में अनगिनत दिखावटी पीर-फकीर, औलीऐ, योगी, जपी, तपी फँसे हुए हैं तथा चेले चाटों तथा अन्य जिज्ञासुओं को भी परमार्थिक 'भ्रम-गढ़' के मन-मोहक भड़कीले नाटक-चेटक के चमत्कारों में फँसाये रखते हैं।

उदाहरण के रूप में 'वली कंधारी', 'मियां मिठा', 'नूरशाह', 'गोरख नाथ', 'भरथरी योगी', आदि का इतिहास में उल्लेख आया है, तथा आज भी अनेक दिखावटी योगी, स्वामी, आचार्य, गुरू, साध, संत कई प्रकार की योग साधनाओं जैसे कि —

योगियों वाला योग
कुंडलनी का योग
हठ योग
तांत्रिक योग
जंत्र-मंत्र

आदि, अनेक नामों अधीन देश-विदेश में प्रचार करके अपना-अपना परमार्थिक जाल बिछाये फिरते हैं तथा भोले-भाले जिज्ञासुओं को ये फोकट साधन बड़े मंहगे मूल्य पर खुल्लम खुल्ला बेच रहे हैं। इस प्रकार वे अपने आप को तथा अपने चेले- चाटों को वास्तविक सच्ची-पवित्र आत्मिक मंजिल से वंचित कर रहे हैं।

इन फोकट परमार्थिक साधनाओं को 'आत्मिक मंजिल' समझना ही अत्यन्त सूक्ष्म तथा सबल आध्यात्मिक **'भ्रम-भुलाव'** है।

यही कारण है कि गुरू नानक साहिब ने स्वयं जाकर ऊपर बताये तथा अन्य अनेक योगियों को उनके फोकट योग से **मुक्त कर 'नाम' का आत्मिक दान प्रदान किया**।

इन आध्यात्मिक भ्रम-भ्रांतियों के विषय में गुरबाणी में और भी प्रकाश डाला गया है —

भरमे सुरि नर देवी देवा ॥ भरमे सिध साधिक ब्रहमेवा ॥
भरमि भरमि मानुख डहकाए ॥ दुतर महा बिखम इह माए ॥
गुरमुखि भ्रम भै मोह मिटाइआ ॥ नानक तेह परम सुख पाइआ ॥
(पृ२५८)

तंतु मंतु पारवंडु न जाणा रामु रिदै मनु मानिआ ।। (पृ. ७६६)

मनमुरिव भरमि भवै बेबाणि ।। बेमारगि मूसै मंत्रि मसाणि ।।
सबदु न चीनै लवै कुबाणि ।। नानक साचि रते सुरवु जाणि ।। (पृ ९४१)

तंत्र मंत्र पारवंड करि कलहि क्रोधु बहु वादि वधावै ।
आपे धापी होइ कै निआरे निआरे धरम चलावै ।.........
फोकटि धरमी भरमि भुलावै । (वा.भा.गु.१/१८)

रिरवी मुनी दिगंबरा कालरव करामात अगलेरे ।
साधक सिध अगणत हैनि आप जणाइिनि वडे वडेरे ।
बिन गुर कोइ न सिझई हउमै वधदी जाइ वधेरे।
(वा.भा.गु.४०/८)

सतिगुर शबद सुरति लिव मूल मंत्र
आन तंत्र मंत्र की न सिरवन प्रतीत है । (क.भा.गु. १८३)

इस धरती के चारों ओर अथाह **'अन्तरिक्ष'** है, जिस में अनगिनत बड़े-छोटे 'ग्रह' हैं । इन ग्रहों में 'धरती' भी एक ग्रह है ।

इस धरती पर कुदरत की अनंत रचना है । इस प्रकृति में —

रंग-रस
दुरव-सुरव
रवुशी-गमी
गर्मी-सर्दी
जीवन-मौत

आदि, कई तरंगों का बोलबाला तथा व्यवहार है।

जब हम हवाई जहाज में उड़ते हैं, तब इस धरती के सारे रंगों-तरंगों को नीचे छोड़ कर 'अन्तरिक्ष' में जा पहुँचते हैं ।

इस अथाह **'अन्तरिक्ष'** में किसी प्रकार का 'जीवन' या 'जीवन-रवेल-अरवाड़ा' नहीं है । वहाँ तो —

रूरवा
सूरवा
फोकट
रस-हीन
रंग-हीन

एकांत

डरावनी निर्जनता

की 'शून्य' छायी हुई है ।

इसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक अवस्थाएँ हैं।

शरीर रूपी 'धरती' में हमारा जीवन व्यतीत होता है तथा अपने-अपने कर्मों अनुसार दुरव-सुरव भोगते हैं तथा मायिकी 'विराट नाटक' में उलझे रहते हैं।

हमारे 'जवीन' के चार पड़ाव हैं —

1. शारीरिक जीवन
2. मानसिक जीवन
3. धार्मिक जीवन
4. आत्मिक जीवन

जब जीव शारीरिक तथा मानसिक जीवन के 'रवेल-अरवाड़े' से असन्तुष्ट होकर सुमिरन द्वारा वृत्ति को एकाग्र करता है, तब वह अर्न्तमुरव होने की विधि सीरवता है। इस प्रकार जीव सुरति की एकाग्रता द्वारा 'मानसिक जीवन' में से निकलकर **शून्य-समाधि** के रवालीपन अथवा **'अन्तरिक्ष' में जा घुसता है ।**

अकाल पुरुष के अनुभवी आत्मिक मंडल तक पहुँचने के लिए आन्तरिक 'शून्य' या **'शून्य अवस्था'** में से गुजरना पड़ता है । दूसरे शब्दों में मायारूपी रवाई में से निकलकर ईश्वरीय 'बेगमपुरा' के मार्ग में 'शून्य समाधि' या 'परमार्थिक शून्य' भी एक पड़ाव है, जिस तक एकाग्रता तथा स्थिरता द्वारा पहुँचा जा सकता है ।

जब जिज्ञासु की सुरति मानसिक 'शून्य-समाधि' में स्थित हो जाती है, तब उसे शान्ति, एकान्त, सुरव, ठंडक प्रतीत होती है, जिस में से निकलने को दिल नहीं करता, क्योंकि इस 'शून्य समाधि' में मायिकी मंडल के 'अग्नि-शोक-सागर' से बचाव होता है। इसलिए जब भी जिज्ञासु को अवसर मिलता है, वह 'शून्य-समाधि' में ज्यादा से ज्यादा स्थित रहने का प्रयत्न करता है। इसे **योगियों वाली 'समाधि'** कहा जाता है ।

बहुत से जिज्ञासु इन योगियों के प्रभाव अधीन इसी **रूरवी-सूरवी 'शून्य-समाधि'** में प्रवृत्त हो जाते हैं तथा वहीं सन्तुष्ट होकर, इससे अगली अवस्था —

प्रेम-भक्ति

सहज समाधि

सहज आनन्द

नाम

शबद

को भूल जाते हैं। इस का अर्थ यह है कि जिज्ञासु ऐसी रूरवी-सूरवी शून्य-समाधि को

ही **आत्मिक जीवन की 'मंज़िल' समझ कर,** अपनी अगली उच्च-पवित्र प्रेम स्वैपना तथा महा रस वाली आत्मिक मंज़िल से **वंचित रहता है।**

जब जिज्ञासु की 'समाधि' खुलती है तथा उसकी सुरति पुनः मायिकी मंडल में उतर आती है, तब उस पर मायिकी मंडल का दुबारा हानिकारक प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है तथा वह पुनः साधारण सांसारिक 'मनुष्य' का मनुष्य ही रह जाता है।

ऐसे योगियों की सुरति 'मुर्गे की उड़ान' की भाँति परमार्थिक शून्य तक ही सीमित होती है। इस से आगे आत्मिक मंडल की 'प्रेमा भक्ति' की 'झलक' से वंचित रहते हैं तथा प्रेम रस का आश्चर्यजनक स्वाद अनुभव नहीं कर सकते।

इस प्रकार यह 'शून्य-समाधि' जिज्ञासु के आत्मिक मार्ग में **सूक्ष्म तथा सबल रुकावट** है, जिस में योगी अपने-आप नहीं निकल सकता। इस विषय को गुरबाणी में इस प्रकार स्पष्ट किया है —

हरि की गति नहि कोऊ जानै ॥
जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोग सिआने ॥ (पृ ५३७)

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ ॥
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिंङी वाईऐ ॥.........
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ ॥
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ ॥ (पृ ७३०)

गुरमुखि होवै सोई बूझै जोग जुगति सो पाए ॥
जोगै का मारगु बिखमु है जोगी जिस नो नदरि करे सो पाए ॥ (पृ ९०९)

इस मानसिक मंडल की फोकट **'शून्य-समाधि' को आत्मिक मंडल की प्राप्ति समझना ही जिज्ञासु का दीर्घ 'भ्रम-भुलाव' है।**

परन्तु, इस सूक्ष्म परमार्थिक भ्रम-भुलाव को जिज्ञासु केवल गुरू-कृपा द्वारा बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगति में ही बूझ-सीझ सकता है। इस **गुप्त भेद** को गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है —

गुर कै बचनि कीनो राजु जोगु ॥
गुर कै संगि तरिआ सभु लोगु ॥ (पृ २३९)

थिर थिर चित थिर हों ॥ बनु ग्रिहु समसरि हां ॥ अंतरि एक पिर हां ॥
बाहरि अनेक धरि हां ॥ राजन जोगु करि हां ॥ (पृ ४०९)

सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ ॥
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ ॥ (पृ ७३०)

खट करम किरिआ करि बहु बहु बिसथार
सिध साधिक जोगीआ करि जट जटा जट जाट ॥

करि भेरव न पाईऐ हरि ब्रहम जोगु
हरि पाईऐ सतसंगती उपदेसि गुरू गुर संत जना रवोलि रवोलि कपाट ।।
(पृ. १२९७)

जोगु न भगवी कपड़ी जोगु न मैले वेसि ।।
नानक घरि बैठिआ जोगु पाईऐ सतिगुर कै उपदेसि ।। (पृ. १४२१)

ऐसी फोकट मानसिक शून्य समाधि (thoughtless state of mind) से **हमारा जीवन बदल नहीं सकता** तथा न ही आत्मिक 'प्रिम प्याले' का रस अनुभव हो सकता है। अपितु जिज्ञासु को अपने योग-अभ्यास का **अभिमान** हो जाता है। इस फोकट योग अभ्यास की साधना में सन्तुष्ट हो कर ईश्वरीय प्रिम-रस से वंचित रहते हैं।

यह योगियों वाली 'मानसिक-समाधि' रस हीन, रव्याल हीन, शून्य अवस्था है, जो **'जागृत अवस्था' में कायम नहीं रहती ।** इसलिए ऐसी फोकट शून्य समाधि हमारे जीवन को ऊँचा नहीं कर सकती तथा आत्मिक मार्ग के लिए व्यर्थ तथा लाभहीन है।

परन्तु इसकी तुलना में गुरबाणी में गुरू साहिबान ने हमें बरव्शे हुए गुरमुरव प्यारों की संगति में **श्रद्धा-भाव, प्रिम-रस तथा प्रेम-स्वैपना** के उच्च पवित्र दैवीय मनोभावों से **मन को 'रंगने' का उपदेश दिया है** तथा **समाधि के अन्दर या समाधि से निकलकर चेतनता में भी,** किसी प्रिम रस अथवा प्रेम स्वैपना का रंग-रस पान कर सकते हैं।

इसे गुरबाणी में **'सहज-समाधि' कहा गया है,** जो जागते, सोते जिज्ञासु की वृत्ति को किसी अकथनीय आत्मिक रस-रंग-आनन्द-चाव में **एकसार** रखती है। गुरबाणी में इस आश्चर्यजनक अवस्था को यूँ दर्शाया है —

देरिव अचरजु रहे बिसमादि ।।
घटि घटि सुर नर सहज समाधि ।। (पृ. ४१६)

सुंन समाधि रहहि लिव लागे एका एकी सबदु बीचार ।।
जलु थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ।। (पृ. ५०३)

गुरमुरिव जपि सभि रोग गवाइआ अरोगत भए सरीरा ।।
अनदिनु सहज समाधि हरि लागी हरि जपिआ गहिर गंभीर ।। (पृ. ५७४)

सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई ।।
गुर कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताड़ी लाई ।। (पृ. १२३२)

इन दोनों प्रकार की समाधियों के निर्णय के लिए निम्नलिखित वर्णन दिया जाता है —

योगियों वाली मानसिक 'शुन्य समाधि'	**प्रेम भक्ति की 'सहज-समाधि'**
त्रिगुण मायिकी मंडल की प्रवृत्ति है	आत्मिक मंडल का खेल है।
मानसिक शान्ति का मार्ग है	प्रेम भक्ति का आत्मिक मार्ग है।
मैं-मेरी का बोल बाला है	तूं-तेरी का व्यवहार है ।
शून्य अवस्था है	आत्मिक प्रेम-स्वैपना है।
रसहीन है	'प्रिम रस' है।
रंगहीन है	प्रेम रंग है।
मानसिक रूखी-सूखी एकान्त है	आत्मिक रहस्यमय चाव है।
माया का क्षणिक त्याग है	माया में उदासीन है।
रिद्धियाँ-सिद्धियाँ का व्यवहार है	भाणे में रहना है ।
नाटक-चेटक का खेल अखाड़ा है	प्रेम भक्ति की मस्ती है।
सूक्ष्म अभिमान का कारण है	प्रिम रस में खोना है।
ख्याल-हीन है	प्रिम रस की 'मस्ती' है।
अपना व्यक्तिगत कल्याण है	'परउपकार उमाहा' है।
समाधि खुलने पर पुनः माया की छाया है	दोनों अवस्थाओं में प्रीत डोर का आकर्षण है।
रस हीन समाधि 'तप' जाती है	'खुनक नामु' है।
'अहम्' की साधना है।	'नदर करम' है ।
मानसिक प्राप्ति है ।	आत्मिक छुह है ।
वर-श्राप का व्यवहार है	दया-क्षमा का व्यवहार है
मुक्ति की मंजिल है ।	'प्रीत चरण कमल' की मौज है।
हठ योग है	सहज योग है ।
भ्रम का अंध गुबार है	शबद का प्रकाश है।
जन्म मरण में हैं	'सद जीवै' है।

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ।।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ।।

(पृ५२२)

(क्रमशः.........................)